नेपाली क्रांति, जिन्दाबाद

अप्रैल महीने में नेपाल में घटनाक्रम तेजी से विकसित हुआ हालांकि अप्रत्याशित रूप में नहीं। अगस्त 2005 से जो प्रक्रिया शुरू हुयी थी वह तेजी से विकसित होकर अप्रैल के जनांदोलन के रूप में सामने आई। इस जनांदोलन के अंत में राजा ज्ञानेन्द्र ने जो आत्म समर्पण किया उसका निहितार्थ यह है कि नेपाल में जनवादी क्रांति अपने सार तत्व में पूरी हो चुकी है। यानी शक्तियों का संतुलन और घटनाओं का विकास निर्णायक रूप से जनवाद के पक्ष में हल हो चुका है। अब अगले एक-दो सालों में जो होगा वह यह कि इस जनवादी क्रांति को संवैधानिक - कानूनी रूप प्रदान किया जायेगा तथा ढेरों व्यावहारिक कदम उठाये जायेंगे।

निश्चित ही, इस जनवादी क्रांति का सारा श्रेय नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) और उसके नेतृत्व में गोलबंद नेपाल की क्रांतिकारी जनता को जाता है। इनके दस सालों के जनयु द्ध के बिना, जिससे देश के दो तिहाई हिस्से में माओवादियों का शासन स्थापित हो गया, वह स्थितियां पैदा नहीं हो सकती थीं जिसमें नयी संविधान सभा के गठन और जनवादी गणतंत्र की मांग नेपाल की समूची जनता की मांग बन गई और बुर्जुआ पार्टियों तथा एमाले जैसे संशोधनवादियों को भी इन मांगों के साथ खड़ा होना पड़ा। अप्रैल के जनांदोलन का श्रेय सातों राजनीतिक दलों को, नागरिक समाज को या अनाम 'नेपाली जनता' को देना राजनीतिक धूर्तता है। यह सही है कि इस आंदोलन में सातों राजनीतिक दलों और नागरिक समाज की भ ूमिका रही। औपचारिक नेतृत्व तो सातों राजनीतिक दलों के पास ही था। लेकिन इसकी वास्तविक प्रेरक शक्ति और आधार माओवादी तथा दस सालों का जनयुद्ध था।

फरवरी 1996 में शुरू हुए जनयुद्ध ने जब नेपाल के बड़े हिस्से को अपने आगोश में ले लिया तब नेपाल के सामंती शासक वर्गों में इसे कुचलने के सवाल को लेकर मतभेद खड़ा हो गया। तब राजा वीरेन्द्र के भाई ज्ञानेन्द्र के नेतृत्व में वीरेन्द्र के परिवार की हत्या जून 2001 में की गयी और ज्ञानेन्द्र राजा बन बैठा। उसने माओवादियों और जनयुद्ध को कुचलने के लिए अभियान छेड़ दिया। इसी की कड़ी में उसने 2002 में संसद भंग कर अपनी कठपुतली सरकारें बनानी शुरू कर दीं। बहाना उसने यह बनाया कि संसदीय राजनीतिक दल पतित, भ्रष्ट और सत्ता लोलुप हैं तथा माओवादियों से निपटने में अक्षम।

लेकिन उसके दमन का केवल इतना ही परिणाम हुआ कि जनयुद्ध और आ गे बढ़ गया। उसने और ताकत हासिल कर ली। जब स्थिति वहां पहुंच गई कि जनयुद्ध रणनीतिक ठहराव की स्थिति से रणनीतिक आक्रमण के चरण में दाखिल हो गया तो ज्ञानेन्द्र ने रहे-सहे जनवादी अधिकार भी खत्म कर देश में आपातकाल घोषित कर दिया और सारी सत्ता अपने हाथ में ले ली। लेकिन उसकी यह कार्यवाही उसके पतन का संकेत भी थी। उसके पतन की स्थिति आ पहुंची थी।

राजा के इस कदम ने जनवाद का ढोंग करने वाले और उसका ढिंढोरा पीटने वाले भारत, यूरोप तथा अमेरिका जैसे सभी देशों के शासकों को मजबूर किया कि वे उससे थोड़ ी दूरी बनाने का दिखावा करें। भारतीय शासक तो अब राजशाही के बिना जनवादी नेपाल के विकल्प पर विचार करने लगे हालांकि अमेरिकी साम्राज्यवादी अपने कट्टर प्रतिक्रियावादी चरित्र के अनुरूप ही राजा के पक्ष में दृढ़तापूर्वक खड़े रहे।

राजा के इस दमन चक्र ने नेपाल की बाकी जनता के क्रांतिकारीकरण की प्रक्रिया तेज कर दी। जनयुद्ध के इलाके से बाहर की जनता, राजधानी काठमांडू की जनता भी अब राजशाही-सामंतशाही के खात्मे की मांग पर खड़ी हो गयी। नेपाली जनता के इस क्रांतिकारीकरण का यह परिणाम हुआ कि संसदीय पार्टियों के कार्यकर्ताओं प र दबाव काफी बढ़ गया और वे अपने नेताओं से यह मांग करने लगे कि वे राजशाही के खात्मे और जनवादी गणतंत्र की मांग स्वीकार करें। इस सबका परिणाम यह हुआ कि नेपाली कांग्रेस और एमाले दोनों ने अगस्त 2005 में जनवादी गणतंत्र और नई संविधान सभा के पक्ष में अपनी घोषणा कर दी। यहां से माओवादियों और सातों राजनीतिक दलों के बीच संयुक्त मोर्चे का आधार पैदा हुआ।

इस बीच माओवादी अपनी आंतरिक बहस को अगस्त 2005 में रोल्पा के प्लेनम में निष्कर्ष तक पहुंचाने में कामयाब रहे। इसमें उन्होंने जनवाद के बारे में अपनी पहले की चिंतन प्रक्रिया को आगे बढ़ाया तथा घोषित किया कि वे बहुदलीय जनवाद पर चलेंगे। ऐसा वे नव-जनवादी राज्य में भी करेंगे और समाजवादी राज्य में भी।

बहुदलीय जनवाद के पक्ष में अपनी घोषणा के साथ अब माओवादियों और सातों राजनीतिक दलों में जनवाद के लिए साझे संघर्ष का रास्ता काफी आसान हो गया। यहां तक कि भारत के शासक वर्ग को भी यह महसूस हुआ कि माओवादियों को 'राजनीति की मुख्य धारा' में लाकर उनके हाथ-पांव बांधना उनसे निपटने का ज्यादा बेहतर तरीका है बनिस्पत इसके कि उन्हें कुचलने के लिए नेपाल में भारतीय सेना भेजी जाय और इस तरह आंतरिक व बाह्य संकट आमंत्रित किया जाय। इसके बाद माओवादियों और सातों दलों के बीच पहले नवंबर 2005 और फिर फरवरी 2006 में 12 सूत्रीय समझौता हुआ तथा अप्रैल में राजा के खिलाफ जनांदोलन छेड़ने पर सहमति बनी। जनांदोलन का नेतृत्व सातों पार्टियों को करना था जबकि माओवादी आंदोलन के समर्थन में रहने थे।

जनांदोलन छेड़ने पर सहमति के बावजूद भावी रास्ते के बारे में दोनों पक्षों में सहमति नहीं बन पायी थी। माओवादी चाहते थे कि जनांदोलन के जरिये राजा को सत्ताच्युत कर दिया जाय, आठों दलों को लेकर अंतरिम सरकार बने, एक अंतरिम संविधान घोषित किया जाय तथा नई संविधान सभा के चुनाव कराकर नया संविधान निर्मित किया जाय। नये संविधान के तहत जनमुक्ति सेना और नेपाली सेना को मिलाकर नई सेना गठित की जाय। इसके मुकाबले सातों राजनीतिक दल चाहते थे कि भंग हुई संसद बहाल हो, यह संसद एक सरकार बनाये, सरकार माओवादियों से समझौता वार्ता कर नई संविधान सभा के लिए प्रक्रिया तय करे, नई संविधान सभा का चुनाव हो और नया संविधान बने। इस बीच राजा इस या उस रूप में बना रहे। उसके भाग्य का फैसला संविधान सभा करे।

अप्रैल में जैसे ही जनांदोलन शुरू हुआ (हालांकि इसकी पूर्व पीठिका फरवरी -मार्च के स्थानीय निकाय के चुनावों के बहिष्कार से बन गई थी) वैसे ही उसने समूची जनता को अपने आगोश में ले लिया। यह दिनों-दिन प्रत्यक्ष होता गया कि राजशाही इस आंदोलन को कुचल नहीं पायेगी और न यह आंदोलन स्वतः खत्म होगा। इस आंदोलन के रास्ते में एकमात्र बाधा स्वयं सातों राजनीतिक दलों का नेतृत्व ही था जो इसे इस सीमा में बांधे रखना चाहता था। लेकिन क्रांतिकारी जनता इसके नेतृत्व में चलते हुए भी इसके प्रति अत्यंत शंकालु थी। अंत में जनता राजमहल के पास पहुंच गयी। इस वक्त नेतृत्व का एक इशारा भी राज परिवार का नामोनिशान मिटा सकता था।

लेकिन इसी क्षण सातों पार्टियों के नेतृत्व ने जनांदोलन को आगे बढ़ने से रोक लिया। वे जनता का और उग्र होना नहीं सह सकते थे। तब जनता न केवल राजशाही को समाप्त करती अपितु वह सीधे माओवादियों के साथ जा खड़ी होती। माओवादी एक झटके से काठमांडू में सत्तानशीन हो जाते और सातों दल किनारे ठेल दिये जाते।

इसके बदले सातों दलों ने जनता को रोका और राजशाही को मजबूर किया कि वह अपनी जान बचाने की कीमत पर 2002 की स्थिति बहाल कर दे। राजा ज्ञानेन्द्र के सामने भी और रास्ता नहीं बचा था। घोषित कर्फ्यू का उल्लंघन कर सड़कों पर उतरी लाखों की जनता पर गोली चलाने का आदेश देने का मतलब सेना को विद्रोह के लिए मजबूर करना होता। तब सैनिकों की बन्दूकें सीधे राजमहल की ओर तन जाती। सेना के अफसर यह भांप चुके थे और अंतिम दिनों में सेना प्रमुख ने ही राजा ज्ञानेन्द्र को समझाया कि वह आत्मसमर्पण कर दे। और राजा ने आत्म समर्पण कर दिया। विष्णु के अवतार ने घोषित किया कि जनता ही सार्वभौम है, वही संप्रभुता सम्पन्न है। यही नहीं, उसने जनांदोलन में मारे गये लोगों के प्रति खेद जताया।

राजा ज्ञानेन्द्र के इस आत्म समर्पण के द्वारा सातों राजनीतिक दल जनांदोलन के ज्वार को रोकने में कामयाब रहे। उन्होंने आंदोलन को वापस लेने की घोषणा कर दी। लेकिन यह तभी स्पष्ट हो गया था कि आंदोलन वापस होने के बावजूद, अपना अभीष्ट पूरा कर चुका है, कि यह नेपाल में शक्तियों के संतुलन को राजशाही-सामंतशाही के खिलाफ हल कर चुका है, कि जनवादी क्रांति अपने सारतत्व में पूरी हो चुकी है, कि आंदोलन वापस लेने वाले लोग ही एक-एक कदम के द्वारा इस आंदोलन के लक्ष्यों को हासिल करेंगे।

ऐसा इसलिए था क्योंकि जनआंदोलन की मुख्य प्रेरक शक्ति माओवादी और जनयुद्ध-अपनी समूची ताकत के साथ अभी भी पृष्ठभूमि में मौजूद थे। इस कारण सातों राजनीतिक दल बहुत ज्यादा गद्दारी नहीं कर सकते थे। दूसरा इसलिए भी कि आम जनता की नजरों में राजशाही की वैधानिकता समाप्त हो जाने के बाद वह दुबारा स्थापित नहीं हो सकती थी खासकर तब तो और भी जब माओवादी और जनयुद्ध मौजूद हों। अब राजा द्वारा तख्ता पलट का कोई भी प्रयास या सातों दलों की गद्दारी केवल इतना ही करती कि जनाक्रोश को नये सिरे से भड़का देती और फिर वह हो जाता या हो जायेगा जो सातों दलों की चालाकी के कारण अप्रैल अंत में नहीं हो पाया था यानी राजशाही का झटके से खात्मा, जनवादी गणतंत्र की स्थापना और सातों दलों का हाशिये पर जाना।

अप्रैल अंत में सत्ता संभालने के बाद सातों दलों की सरकार ने जनवादी गणतंत्र की दिशा में एक-एक कर कदम उठाये हैं। राजा से सेना का नियंत्रण छीन कर, उसकी राज परिषद भंग कर, नेपाल को धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित कर, नेपाल सरकार और सेना से 'शाही' शब्द हटाकर, कानून बनाने में राजा के वीटो को समाप्त कर राजा शक्तिहीन कर दिया गया है। एक तरह से वह अभी ही नाममात्र का राजा बन गया है हालांकि शासक हलकों में उसके पर्याप्त समर्थक मौजूद हैं।

वर्तमान सरकार नई संविधान सभा के चुनाव की ओर भी क्रमशः बढ़ रही है। नई संविधान सभा बैठने पर नेपाल पूर्णतः जनवादी गणतंत्र घोषित होता है या राजा नाम के लिए बच जाता है, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि संविधान सभा में शक्तियों का संतुलन क्या होता है। ज्यादा संभावना जनवादी गणतंत्र की ही है। यदि संविधान सभा में माओवादी बहुमत में नहीं भी होते हैं तो भी नेपाली कांग्रेस व एमाले को जनवादी गणतंत्र के अपने नारे से मुकरना मुश्किल होगा। जो भी हो, नेपाल की राजनीति में राजशाही-सामंतशाही का खात्मा लाजिमी है, नाम मात्र का राजा भले बच जाय।

यहां यह बात ध्यान रखने की है आज विश्व की जो परिस्थितियां हैं- चौतरफा साम्राज्यवाद, पूंजीवाद का प्रभुत्व तथा नेपाल की जो अपनी वस्तुगत स्थिति है- अत्यल्प संसाधनों वाला छोटा सा भू-आवेष्ठित देश, उसमें समाजवादी ही नहीं जनवादी क्रांति की भी अपनी सीमाएं हैं। इसमें जनवादी कार्यभार मुख्यतः पूरे होते हुए भी उस तरह पूरे नहीं हो सकते कि देश साम्राज्यवादी-विस्तारवादी प्रभावों से पूर्णतः मुक्त हो जाय। ये साम्राज्यवादी-विस्तारवादी प्रभाव देश के भीतर के जनवाद विरोधी तत्वों के मामले में भी कुछ हद तक अपना असर डालेंगे।

नेपाल की राजनीति में इस मुकाम पर अहम सवाल जनवादी क्रांति से संबंधित नहीं है। वह तो सारतत्व में पूरी हो चुकी है और साल-दो साल में व्यावहारिक तथा कानूनी-संवैधानिक रूप ग्रहण कर लेगी। अहम सवाल उससे आगे के रास्ते से संबंध रखता है। क्या नेपाल जनवादी गणतंत्र से या संसदीय लोकतंत्र से आगे जा पायेगा? क्या नेपाल और विश्व की परिस्थितियां उसे आगे जाने की इजाजत देती हैं?

कहने की बात नहीं कि यदि संविधान सभा में गैर माओवादियों का बहुमत होता है तो सारा मामला संसदीय लोकतंत्र तक, पूंजीवादी संसदीय लोकतंत्र तक सिमट कर रह जायेगा। तब फिर से शुरू हुआ जनयुद्ध भी इसे आगे नहीं ठेल पायेगा।

यदि संविधान सभा में माओवादियों का बहुमत होता है तब क्या होगा? तब जनवादी गणतंत्र से आगे समाजवाद की ओर जाने की संभावना पैदा होती है। लेकिन तब समाजवाद की ओर जाने में दो नई बाधायें आयेंगी। पहली बाधा तो खुद माओवादी हैं। पिछले चार-पांच सालों में इन्होंने बीसवीं सदी के कम्युनिस्ट आंदोलन के संबंध में, सोवियत संघ-चीन इत्यादि में समाजवाद के निर्माण के संबंध में, बहुदलीय राजनीतिक प्रणाली के संबंध में, क्रांति पूर्व व बाद की कम्युनिस्ट पार्टियों की कार्यपद्धति के संबंध में जो बातें कहीं हैं वे बहुत चिंता पैदा करती हैं। वे सीधे- सीधे सामाजिक जनवादी भटकाव प्रतिबिंबित करती हैं। नेपाली क्रांति के सामने बाहरी व भीतरी जितनी बांधाएं खड़ी हैं, उन्हें देखते हुए ये भटकाव नेपाल की नई जनवादी क्रांति के इससे आगे के विकास के लिए बहुत घातक हैं। इन भटकावों के कारण हो सकता है कि संविधान सभा और संसद में बहुमत के बावजूद खुद माओवादी पूंजीवादी लोकतंत्र के दायरे में सिमट कर रह जायें।

नेपाली क्रांति के समाजवाद की ओर विकास में दूसरी प्रमुख बाधा वस्तुगत यथार्थ है। नेपाल एक संसाधन विहीन, पिछड़ा, छोटा सा देश है। अपने दम पर समाजवाद का निर्माण करने की परिस्थितियां (संसाधन) इसके भीतर नहीं हैं। दुनिया में आज कोई समाजवादी देश नहीं है जो इसकी मदद कर सके। उल्टे दुनिया के सारे पूंजीवादी शासक-साम्राज्यवादी और गैर साम्राज्यवादी दोनों-इस क्रांति के समाजवाद की ओर बढ़ने के विरोधी होंगे। समाजवाद की ओर बढ़ने पर इस क्रांति को आर्थिक प्रतिबंधों-समेत अन्य तमाम बाधाओं का सामना करना पड़ेगा। वस्तुतः भारतीय विस्तारवादी और साम्राज्यवादी इसी पर उम्मीद लगाये हुए हैं कि वे इसी माध्यम से नेपाली क्रांति को आगे बढ़ने से रोक लेंगे। माओवादियों को पूंजीवादी लोकतंत्र के दायरे में बांध देंगे।

नेपाली क्रांति का समाजवाद की ओर विकास अत्यंत कठिन है। लेकिन कठिनाइयों से डरकर आगे जाने से इंकार करना क्रांतिकारियों का चरित्र नहीं है। माओवादियों को भी आगे बढ़ने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। इस बीच दुनिया के सारे ही कम्युनिस्ट क्रांतिकारियों का यह दायित्व बनता है कि वे इस क्रांति की हर संभव मदद करें। इसमें सबसे बड़ी मदद अपने देश में क्रांति के प्रयास तेज करने की होगी।

नेपाल की क्रांति इस सदी की पहली क्रांति है। यह साम्राज्यवाद-पूंजीवाद के हावी होने के इस काल में हुई क्रांति है। यह क्रांति अपने होने मात्र से प्रतिक्रियावादियों के उन तर्कों को धराशाई कर देती है कि क्रांतियों का जमाना बीत गया है। इस क्रांति ने हमारी आंखों के सामने क्रांतिकारी जनता का नजारा पेश किया है।

इस क्रांति ने एक बार फिर दिखाया है कि क्रांतियां किस तरह बंधे-बंधाए सूत्रों को तोड़ देती हैं, उन्हें दरकिनार कर देती है। नव जनवादी क्रांति की सामान्य अवधारणा के अलावा नेपाली क्रांति के विकास ने एकदम अप्रत्याशित रास्ते ग्रहण किये हैं। सातों दलों के साथ गठबंधन और भारत सरकार द्वारा सैनिक हस्तक्षेप के बदले घटनाक्रम को स्वीकारना यह ऐसा था जिसकी चार साल पहले भविष्यवाणी नहीं की जा सकती थी। नेपाली क्रांति का यह प्रत्यक्ष सबक क्रांतिकारियों के लिए महत्वपूर्ण है।

नेपाल की क्रांति इक्कीसवीं सदी में हुई है लेकिन यह इक्कीसवीं सदी की क्रांति नहीं है। यह इक्कीसवीं सदी में होने वाली बीसवीं सदी की क्रांति है। यह क्रांति इतिहास के छूटे हुए कार्यभारों को पूरा कर रही है-जनवाद के कार्यभारों को। इक्कीसवीं सदी की क्रांतियां जनवादी नहीं, समाजवादी क्रांतियां होंगी, पूंजी की सत्ता को समाप्त करने वाली क्रांतियां। ये क्रांतियां भारत से लेकर संयुक्त राज्य अमेरिका तक होंगी। और वे दीर्घकालीन लोकयुद्ध के बदले विद्रोह से आम विद्रोह से, कुछ उसी तरह के विद्रोह से जैसा कि अप्रैल में काठमांडू में दिखा। हालांकि यह विद्रोह ज्यादा व्यापक और कई गुना उग्र और हिंसक होगा।

नेपाल की यह क्रांति इक्कीसवीं सदी की समाजवादी क्रांतियों के लिए न तो नजीर बनती है और न ही कोई नया सबक प्रदान करती है। यह केवल क्रांतिकारियों के लिए प्रेरणा का, उत्साहवर्धन का काम करती है। इसकी भूमिका दुनिया भर के क्रांतिकारियों के लिए वही है जो कामरेड प्रचंड ने काफी पहले अपने साक्षात्कार में परिभाषित की थी-तपते मरूस्थल में एक गिलास शीतल जल की भूमिका। लेकिन आज के बुरे समय में यह भी कम नहीं है। नेपाल की सदियों से उत्पीड़ित-शोषित जनता के लिए तो यह बहुत-बहुत ज्यादा है। नेपाली क्रांति, जिंदाबाद! नेपाल की क्रांतिकारी जनता, जिंदाबाद!!

□□□